SC
2|8|21

प
२२२

hp 9.5

॥ श्रीः ॥

हिन्दी भाषानुवाद सहित

शिवमहिम्नःस्तोत्र

गोमहिमा

और

गङ्गाष्टक







श्रीगणेशाय नमः ।

अथ शिवमहिम्नःस्तोत्रम्

भाषानुवादसहितम् ।

मूल ।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥ १ ॥

टी० । पुष्पदन्ताचार्य की प्रार्थना शिव जी के प्रति—हे हर जिसने तुम्हारी महिमा का पार नहीं पाया उस मनुष्य की की हुई स्तुति जो तुम्हारे योग्य न हो तो ब्रह्मा आदि देवताओं ने जो स्तुति की है वे भी निष्फल हों क्योंकि उन्हों ने भी पार नहीं पाया इससे सब मनुष्य वा देवता अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार स्तुति करते हैं इस कारण हे दुःख-हरण शिव इस स्तोत्र में हमारी भी स्तुति का प्रारम्भ निर्दोष हो । कदाचित् कोई कहे कि महिमा का पार क्यों नहीं जाना जाता इस कारण द्वितीय श्लोक है ॥ १ ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥

टी० । हे भगवन् तुम्हारी महिमा वाणी वा मन की प्रकृति से परे है और इन दोनों की प्रवृत्ति अर्वाचीन अर्थात् संसार के पदार्थों में होती है अर्थात् हे शिव तुम से इधर की वस्तुओं को सब कोई जान सकता है वेद भी संदेह से ऊपर ही ऊपर तुम को वर्णन करता है जैसे कोई मनुष्य किसी से पूछे कि मोती कैसा होता है तो वह हाथ में रख कर दिखाता है इस प्रकार से वेद की सामर्थ नहीं है कि प्रत्यक्ष करा दे तो कौन तुम्हारी स्तुति कर सकता वा गुण जान सकता है ॥ २ ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

टी० । हे ब्रह्मन् देवताओं के गुरू बृहस्पती जी की वाणी क्या तुम को कुछ आश्चर्य युक्त नहीं करा सकती है क्योंकि वे अमृत की तुल्य मधुर और कोमल २ अर्थात् सुन्दर २ छन्द और अलङ्कार सहित वाणियों के कर्ता हैं यदि उन की यह गति है तो मेरी क्या सामर्थ है हे त्रिपुर दहन कामदेव के दाहक मैंने तो केवल तुम्हारे गुणों के वर्णन से अपनी वाणी के पवित्र करने को स्तुति के निमित्त यत्न किया है ॥ ३ ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।

अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

टी० । हे वरद तीनों वेदों करके वर्णनीय जगत के उत्पत्ति रक्षा प्रलय का कारण जो तुम्हारा ऐश्वर्य है सो रजोगुण सत्य-गुण तमोगुण विशिष्ट तीन शरीरों में वर्तमान है अर्थात् ब्रह्मा विष्णु शिव ये तीनों तुम्हारी ही सामर्थ से उत्पत्ति स्थिति प्रलय को करते हैं हे भगवन् इस संसार में कोई २ मन्द मति मीमांसक आदि तुम्हारे ऐश्वर्य की माया कल्पित है इत्यादि दोषों से निंदा करते हैं यह निंदा तुम्हारे ऐश्वर्य में सम्भव नहीं हो सकता है परन्तु दुर्भागी मनुष्यों को रमणीय लगता है ॥ ४ ॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

टी० । कोई २ मन्द मति संसार के अज्ञान के निमित्त वा नरक में जानेके निमित्त यह कुतर्क करते हैं कि वह ब्रह्मा चेष्टा वा शरीर वा कोई उपाय वा और कोई निमित्त कारण इनके विना तीनों लोकों को उत्पन्न करते हैं यह कुतर्क तुम में सम्भव नहीं हो सकता है क्योंकि तुम्हारा ऐश्वर्य तर्क करने के योग्य नहीं है तुम्हारे ऐश्वर्य को संसार उत्पन्न करने के लिए कोई सामग्री अपेक्षित नहीं है ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।

अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

टी० । हे भगवन् भू आदि जो सात लोक हैं सावयव हैं इनकी उत्पत्ति क्या किसो से नहीं है जो २ अवयव सहित पदार्थ हैं वे उत्पत्ति सहित हैं विना चेतन अधिष्ठान के संसार की रचना संभव नहीं हो सकती और कदाचित् विना ईश्वर के संसार की उत्पत्ति है तो उसकी उत्पत्ति में क्या सामग्री अपेक्षित है जिस कारण मन्द मति मिमांसक आदि तुम्हारे होने में संदेह करता है अर्थात् तुम्हारे होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥

टी० । हे भगवन् वेद सांख्यशास्त्र न्याय पाशुपत वैष्णव मत ये पांचो भिन्न २ मार्ग का वर्णन करते हैं अपनी २ रुचि के अनुसार इन मार्गों में चलने वाले मनुष्यों के परिणाम में गम्य एक तुम हो जैसे सीधे वा टेढ़े मार्ग में वहती हुई नदियों का गम्य एक समुद्र है ॥ ७ ॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः
कपालं चेतीयत् तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहिता
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयन्ति । ८ ॥

टी० । हे वरद तुम्हारे घर की सामग्री केवल इतनी वस्तु हैं महोक्ष अर्थात् बड़ा वैल खट्वांग अर्थात् दण्ड के ऊपर का

ब्रह्मकपाल फर्सा गजचर्म भस्म सर्प औ कपाल परन्तु देवता केवल तुह्मारी दी हुई ऋद्धियों को भोगते हैं कदाचित् कोई यह कहै कि वे आपही उन ऋद्धियोंको क्यों नहीं भोगते तो विषय रूपी मृगतृष्णा परिपूर्ण ब्रह्म को भ्रमा नहीं सकती है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्ते ऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ९ ॥

टी० । कोई २ बुद्धिमान इस संसार को स्थिर और कोई २ अस्थिर और कोई २ स्थिरास्थिर मिला हुआ वर्णन करते हैं इस संसार के स्थिर और अस्थिर और स्थिरास्थिर होने में प्रमाण के न मिलने में बड़ी भ्रमता में डूब कर हे भगवन् तुह्मारी स्तुति करता हुआ लज्जित हूँ परन्तु मेरी वाचालता स्तुति करवा रही है ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चयो हरिरधः
परिच्छेतुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥ १० ॥

टी० । हे भगवन् तुम्हारे ऐश्वर्य का छोर देखने को बड़े यत्न से विष्णु तो नीचे और ब्रह्मा जी ऊपर को गए तौ भी वायु रूपी तुम्हारे स्वरूप को न प्राप्त हो सके फिर बैठ कर भक्ति और श्रद्धा से जब तुह्मारी स्तुति करने लगे तब तुम आप प्रत्यक्ष हुए क्या तुम्हारी सेवा निष्फल होती है नहीं सफल ही होती है ॥ १० ॥

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरिव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहवलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ ११ ॥

टी० । हे त्रिपुरासुर के मारक हे शिव रावण ने अपने शिर रूपी कमलों से तुह्मारे चरणों का जो पूजन किया इस दृढ़ भक्ति के प्रताप से तीनों लोकों को विना परिश्रम निर्वैरि अर्थात् निष्कंटक कर के अपनी भुजाओं को जो केवल संग्राम चाहती थीं धारण किया है ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि ।
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥ १२ ॥

टी० । इस रावण ने तुह्मारी सेवा के प्रताप से बड़ा बलवान भुजों का समूह प्राप्त किया जिस के बल से तुह्मारे निवास स्थान कैलास को भी उठा लिया फिर जब आप ने स्वाभाविक ही पांव के अंगूठे से पर्वत को दावा तब रावण को प्रतिष्ठा पाताल में भी न हुई क्योंकि दुष्ट जन बढ़ कर अभिमान को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १३ ॥

टी० । हे भगवन् तुह्मारे चरणों के पूजन के प्रताप से त्रिभुवन को वशीभूत करके इन्द्र के परम उच्च पद को वाणासुर ने

जो तिरस्कृत किया तो क्या आश्चर्य है क्योंकि तुम्हारे सामने जो शिर झुकाना है सो किसी एक वृद्धि का कारण नहीं है किन्तु सब ही वृद्धि का ॥ १३ ॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥ १४ ॥

टी० । हे भगवन् जिस समय समुद्र से हलाहल विष निकला तो देवता और राक्षसों को यह भय हुआ कि कहीं असमय में संसार का प्रलय न हो जाय तब कृपा कर के उन की रक्षा के लिये आप ने जो महा घोर विष कण्ठ में धारण किया सो आपके कण्ठ में विष भी अत्यन्त शोभा दे रहा है ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्त्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥ १५ ॥

टी० । हे ईश जिसके बाण ऐसे प्रबल हैं कि देवता राक्षस मनुष्यों करके व्याप्त भी संसार है तो भी जिसको लगते हैं बिना अपना प्रयोजन सिद्ध किये निवृत्त नहीं होते हे शिव तुमको भी और देवताओं के तुल्य साधारण देखने से उस कामदेव का नाम मात्र बाकी रह गया अर्थात् तुह्मारे तृतीय नेत्र से शरीर भस्म हो गया क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष है कि जितेन्द्रियों का अनादर करना सुखकारी नहीं होता है ॥ १५ ॥

महो पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

टी० । हे भगवन् तुम संसार की रक्षा के निमित्त नृत्य करते हो अर्थात राक्षसों को नृत्य के आनन्द में डाल कर उनसे रक्षा करते हो और नृत्य के समय चरणों की धमक से पृथ्वी यह सन्देह करती है कि मैं टूटी जाती हूँ वा पाताल में घुसी जाती हूँ इसी प्रकार भुजाओं के घुमाने से विष्णु के स्थान आकाश में तारागण खण्ड २ हो गए और इसी प्रकार लम्बी२ शिखाओं की झटकार से स्वर्ग आप को कठिनता से थाम रहा है हे शिव तुह्मारी प्रभुता बड़ी विलक्षण है ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

टी० । हे शिव तारागणों करके चमकता हुआ जल समूह जो आकाश पर्य्यन्त व्याप्त हो रहा है सो आप के शिर पर सूक्ष्म जल कणिका के समान दृष्ट आता है परन्तु आप ने उतने ही जल से समुद्र करके इस महा द्वीपाकार संसार को चारों ओर से घेर लिया है सो हे भगवन् आप के दिव्य शरीर का विस्तार इसी दृष्टान्त से अनुमान करने के योग्य है ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरहो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।

दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥ १८ ॥

टी० । हे भगवन् तृण के तुल्य त्रिपुरासुर के नाश करने को जो आपने इतना आडम्बर अर्थात् पृथ्वी का रथ नियन्ता ब्रह्मा हिमाचल पर्वत का धनुष रथ के चक्र अर्थात पहिये चन्द्रमा और सूर्य्य श्री विष्णु रूपी वाण रचा है सो क्या तृण के तोड़ने को भी बड़े २ शस्त्र अपेक्षित होते हैं इस कुतर्क का यह उत्तर है कि तीव्र बुद्धि जन खेल में भी निर्बल के अधीन नहीं होते हैं सर्वदा स्वतन्त्रही रहते हैं ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

टी० । हे त्रिपुरहर श्रीकृष्ण जी सहस्र कमल लेकर आप के चरणारविन्दों का पूजन करने लगे करते २ एक कमल कमती देख कर भक्ति की दृढ़ता से अपने नेत्र रूपी कमल निकास कर पूर्ण पूजन करते भए श्रीकृष्ण जी की यही दृढ़ भक्ति सुदर्शन चक्र का रूप धारण कर तीनों लोकों की रक्षा कर रही है ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत् त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धांबध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २० ॥

टी० । हे भगवन् आपही को यज्ञ के फलदाता समझ कर और वेद में दृढ़ विश्वास कर मनुष्य कर्मों का आरम्भ करते

हैं क्योंकि जब क्रिया रूप यज्ञ समाप्त हो गया तो आपही विद्यमान रहते हो कदाचित् कहो कि नष्ट कर्म ही फल देता तो निश्चय है कि चैतन्य पुरुष के आराधन विना नष्ट कर्म्म फल दायक नहीं हो सकता आशय यह कि कर्ममात्र के फल दाता आप ही हो ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुषु फलदानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्त्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २१ ॥

टी० । क्रिया में कुशल दक्ष प्रजापति सो तो यज्ञ कर्ता और जिसकी सभा में ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह के समूह और बड़े २ ऋषि जिसमें आचार्य अर्थात् यज्ञ कराने वाले इतने पर भी जो यज्ञ बिगड़ जाय तो आश्चर्य है सो हे भगवन् आप की ओर अश्रद्धा ही बिगाड़ का कारण है क्योंकि कर्ममात्र के फल दाता आप ही हो तुम्हारी श्रद्धा रहित जितना कर्म किया जाय सब निष्फल होगा ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥ २२ ॥

टी० । किसी समय ब्रह्मा काम के वस हो रमण की इच्छा से अपनी कन्या के ऊपर दौड़ा तब वह कन्या अधर्म के भय से मृगी बन कर भाग चली कि उसी समय ब्रह्मा ने भी मृग का रूप धारण कर पीछा किया सो हे भगवन् उस समय आप ने

ऐसी अनीत देखकर उस मृग के ऊपर जो धनुष हाथ में लेकर आखेट का उत्साह किया वह ब्रह्मा स्वर्ग तक भागा परन्तु आप के धनुष ने आज तक पीछा नहीं छोड़ा आशय यह है कि आप का धनुष वाण अन्यायी का पीछा कभी नहीं छोड़ता ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरःप्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्द्धघटना
दवैति त्वामद्धा वत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

टी० । हे भगवन् आपने जो धनुषधारी कामदेव को शीघ्र ही भस्म किया फिर उसका आधा शरीर उत्पन्न कर अपने शरीर में धारण किया यह चरित्र देखकर निज स्वरूपाभिमानिनी पार्वती जी आप को व्यभिचारी कहती हैं क्योंकि कामदेव को भस्म किया और फिर उत्पन्न कर अपने शरीर में धारण किया परन्तु हे भगवन् आप में यह दोष लगाना यथार्थ में सत्य नहीं है क्योंकि युवती स्त्री अज्ञान होती हैं उनके कहने का क्या ठीक है ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥ २४ ॥

टी० । हे भगवन् यद्यपि आप का स्थान और आभूषणादि अमंगल पदार्थ हैं जिनके देखने वा सुनने से मन को ग्लानि और भय होता है जैसा कि श्मसान तो खेलने का स्थान खिलाड़ी भूत पिशाच आदि आभूषण चिता की भस्म शरीर में

लगी हुई मनुष्यों की खोपड़ियों वा सर्पों की माला पहिरे हुए ये सब अमंगल हैं तो भी शिव रूप स्मरण करने वालों को आप सर्वदा मंगल रूप ही दृष्ट आते हो ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक् चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥ २५ ॥

टी० । हे भगवन् योगी जन प्राण वायु को रोक कर और आत्मा में अन्तःकरण को ठहराय अनिर्वचनीय तत्व को देख देख कर आनन्द करते हैं इसी आनन्द से उनके रोमांच प्रफुल्लित हो गये और नेत्र छक गये मानों अमृत रूपी ह्रदय में स्नान कर आनन्द कर रहे हैं वह अनिर्वचनीय तत्व आप ही का स्वरूप है ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥ २६ ॥

टी० । हे भगवन् सूर्य चन्द्रमा वायु अग्नि जल आकाश पृथ्वी आत्मा आदि जितने जड़ वा चेतन पदार्थ हैं तुम्हारे ही स्वरूप हैं परिपक्व मति वाले तुम्हारे विषय में इतना ही वर्णन कर सके हैं आगे उनका बुद्धि बल चल नहीं सकता आशय यह है कि ऐसा कोई पदार्थ हम नहीं देखते जिस में तुम व्यापक न हो ॥ २६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथ त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥ २७ ॥

टी०। हे भगवन् ओं यह पद सब पदार्थों में व्यापक होकर अर्थात् अकार आदि वर्णों करके तीनों वेद तीनों वृत्ति उदात्त अनुदात्त स्वरित तीनों लोक स्वर्ग मृत्यु पाताल ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों देवता इन को धारण करता हुआ और आप का जो चौथा निर्विकार धाम है जिसको तुरीय कहते हैं उसको भी ग्रहण करता हुआ आप को स्तुति करता है ॥ २७ ॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिं प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायाऽस्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥ २८ ॥

टी०। हे भगवन् भव १ शर्व २ रुद्र ३ पशुपति ४ उग्र ५ सहमहान् अर्थात् महादेव ६ भीम ७ ईशान ८ ये आप के आठ नाम हैं इनमें से प्रत्येक नाम से वेद आप हो का सगुण वर्णन करता है प्रीति के निमित्त यथा भव नाम से उत्पत्ति कर्ता शर्व से नाश कर्ता रुद्र अर्थात् रोदन कर्ता पशुपति अर्थात् जीवमात्र के पालक उग्र से क्रोध कर्ता सहमहान अर्थात् महत्त्व विशिष्ट भीम अर्थात् भयंकर ईशान में ऐश्वर्य विशिष्ट इस प्रकार आप का सगुण वर्णन करता है हे वेद के प्रिय शिव आप को नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥ २९ ॥

टी० । हे भगवन् आप समीपवर्त्ती हों और दूरवर्त्ती भी हो सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़े से बड़े रूप को धारण करते हो इत्यादि सब स्वरूप को धारण करते हो सब रीति पर तुम को नमस्कार है ॥ २१ ॥

वहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रवलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोत्पत्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

टी० । संसार की उत्पत्ति के समय आप ने रजोगुण सहित रूप धारण किया और सृष्टि के पालन करने को सत्यगुण सहित मृड़ रूप अर्थात् सुखकारी और प्रलय करने के समय तमोगुण सहित हर रूप धारण किया मोक्ष के समय तीनों गुणों करके रहित अर्थात् निर्गुण शिव शांतरूप धारण किया है भगवन् आप के अनेक रूपों को नमस्कार है ॥ ३० ॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम्
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य माम्भक्तिराधाद्-
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥ ३१ ॥

टी० । हे भगवन् आप के गुणों का तो पार नहीं और मेरा चित्त रागद्वेष आदि क्लेश वश हो कर परिणाम में दुर्बल है

इस प्रकार जब मैं गुणों के वर्णन से भय भीत हुआ तब मेरी भक्ति ने उत्साह करवा कर वाणी रूपी फूलों की माला आप के चरणारविन्दों में पहरवा दी आशय यह है कि पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं कि मेरी सामर्थ नहीं जो आप के गुणों का वर्णन करूं परन्तु मेरी भक्ति ने यत्किंचित् वर्णन करवाया है ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखिनीं पत्रमूर्व्वी
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ३२ ॥

टी०। हे भगवन् कदाचित् सरस्वती श्यामपर्वत के तुल्य काजल समुद्र रूपी दावात में डाल कर कल्पवृक्ष रूपी लेखिनी से आप के गुणों को लिखे तो भी पार को प्राप्त नहीं होगा क्योंकि आपके अनन्त गुण हैं और हमारा क्या सामर्थ है जो आप के गुण वर्णन कर सके ॥ ३२ ॥

शिवजी की महिमा के ये ३२ श्लोक हैं इस में आगे स्तोत्र कर्त्ता स्तोत्र की प्रशंसा और अपने नाम से विशेषण लिखते हैं।

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौलेः
ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥ ३३ ॥

टी०। सकल गुण ज्ञाता पुष्पदन्ताचार्य ने देवता और राक्षस करके पूजित और चन्द्रमा जिन के मस्तक पर शोभायमान प्रसिद्ध जिनके गुण ऐसे शिव जी की स्तुति अति मनोहर विस्तृत श्लोकों से की है ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यः सदात्मा
प्रचुरतरधनायुः पुत्रमान् कीर्तिमांश्च ॥ ३४ ॥

टी० । श्रीमहादेव जी के इस निर्दोष स्तोत्र को जो मनुष्य शुद्ध चित्त होकर परम भक्ति से नित्य प्रति पढ़ैगा वह शिवलोक में रुद्र के तुल्य गिना जायगा और इस लोक में धन संतान अवस्था कीर्ति बहुत पावेगा ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानयागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३५ ॥

टी० । दीक्षा दान तप तीर्थ करना ज्ञान यज्ञ आदि कर्म उस फल के सोलहवें भाग के भी तुल्य फल नहीं देते जो महिम्नः स्तोत्र के पाठ से प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

समाप्तं तदिदं स्तोत्रं सर्वमीश्वरवर्णनम् ।
अनूपमं मनोहारि पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ॥ ३६ ॥

टी० । गन्धर्व अर्थात् पुष्पदन्ताचार्य का कहा हुआ यह संपूर्ण महिम्नः स्तोत्र बड़ा पुन्यकारी है इस के तुल्य दूसरा कोई मनोहर स्तोत्र नहीं इसमें सब जगह ईश्वर का ही वर्णन है ॥३६॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ ३७ ॥

टी० । महादेव जी से बड़ा कोई देवता नहीं और महिम्नः-स्तोत्र से बढ़ कर कोई स्तोत्र नहीं अघोर मन्त्र से बड़ा कोई मन्त्र नहीं और गुरू से अधिक कोई तत्त्व नहीं है ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥ ३८ ॥

टी० । वे पुष्पदन्ताचार्य जो पहिले गंधर्व योनि में कुसुमदर्शन नाम गंधर्व थे किसी समय एकान्त में शिव जी और पार्वती जी की आनन्द की बातें छिप कर सुनने लगे तो शिव जी ने देखते ही इन को यह शाप दिया कि जाओ तुम इस गंधर्व पदवी से पतित हो कर मनुष्य लोक में जन्म लो तब इन्हों ने यहां जन्म लेकर परम दिव्य इस महिम्नः स्तोत्र से शिव जी को अत्यन्त प्रसन्न कर मनोवांछित फल प्राप्त किया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥ ३९ ॥

टी० । पुष्पदन्ताचार्य का कथित जो निर्दोष महिम्नः स्तोत्र वह कैसा है कि देवता और मुनियों करके पूजित और स्वर्ग प्राप्ति का मूल कारण है ऐसे स्तोत्र को जो मनुष्य स्थिर चित्त होकर हाथ जोड़ कर पढ़ता है वह शिव जी के समीप प्राप्त होता है उसकी स्तुति किन्नर गंधर्व आदि करते हैं ॥ ३१ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ॥
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ४० ॥

टी०। श्री पुष्पदन्ताचार्य के मुखारविंन्द से कहा हुआ जो यह पाप नाशक महिम्नःस्तोत्र है चित्त लगा कर इसके कण्ठ पाठ करने से भूतपति श्री महादेव जी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्योंकि शिव जी को यह स्तोत्र अत्यन्त प्रिय है ॥ ४० ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमुत्पठेत् ।
भवपाशविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ ४१ ॥

टी०। जो मनुष्य इस महिम्नःस्तोत्र को एक वार वा दो वार वा तीन वार नित्य पढ़ैगा वह संसार की फांस से छूटकर शिव लोक में प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

समाप्तम् ।

गोमहिमा ।

———:o:——

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
बिभ्रति पयसा सुतमिव निखिलं जगदेतदञ्जसा नितराम् ।
सम्पादयन्ति जगतां सर्वमेतास्ता नमामि गामातॄः ॥
महाभारते । अम्बरीषो गवान्दत्वाब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान् ।
अर्बुदानि दशैकं च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् ॥ १ ॥

महाराज अम्बरीष ब्राह्मणों को ११ अर्बुद गउओं को दान करके प्रजाओं के सहित स्वर्ग को गये ॥ १ ॥

दत्वा शतसहस्रन्तु गवां राजा प्रसेनजित् ।
सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २ ॥

राजा प्रसेनजित् ने वत्सवती लक्ष गउओं के दान से परम उत्तम स्वर्गादि लोकों में वास पाया ॥ २ ॥

प्रासादा यत्र सौवर्णाः शय्यारत्नोज्ज्वालास्तथा ।
वराश्चाऽप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः ॥ ३ ॥

जिनमें सुवर्ण के मन्दिर हैं और रत्नों से प्रकाशित पर्य्यङ्क और श्रेष्ठ अप्सरा हैं उन लोकों में वे निवास पाते हैं जो लोग वेद विहित विधि से गउओं का दान करते हैं ॥ ३ ॥

गोप्रदो नरकन्नैति पयः पीत्वाऽमृतं जलम् ।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते ॥ ४ ॥

पापी भी गो प्रदाता प्राणी नरक में नहीं पड़ता है किन्तु गोदान के पुण्य प्रभाव से जल स्थानापन्न दुग्ध अर्थात् गउओं का और अमृत के पान से क्षुत्पिपासादि से क्लेश से रहित परम प्रकाशमान विमान से नन्दनादिक स्थानों में विहार करता है॥४॥

तश्चारुवेषाः सुश्रोण्यः शतशो वरयोषितः ।
रमयन्ति विमानस्थं दिव्याभरणभूषिताः ॥ ५ ॥

उस स्वर्गी को उत्तम अनेक देवाङ्गना सेवन करती हैं ॥ ५ ॥

वेणूनां वल्लकीनां च नूपुराणां च निःस्वनैः ।
हासैश्च हरिणाक्षीणां सुप्तः सन् प्रतिबुध्यते ॥ ६ ॥

नाना प्रकार के वाद्यों से अप्सरों के विभूषणों के झणत्कारों से और मधुर वाक्यों से शयन से जागरूक किया जाता है ॥ ६ ॥

यावन्तिरोमाणिभवन्तिधेन्वास्तावन्तिवर्षाणि महीयतेस्वः
स्वर्गाच्युतश्चापिततस्त्रिलोके कुलेसमुत्पत्स्यतिगोमतांसः।७

गऊ के शरीर में जितने रोम हों उतने वर्ष तक स्वर्ग गोप्रदाता नर सत्कृत होता है उसके पीछे कहीं न कहीं गोसेवी होके यहां जन्म पाता है अर्थात् विधिवत् १ गोदान से प्राणी जन्म जनमान्तर गोभक्त होकर नरक से कभी नहीं भेंट करता है।७

विष्णुः । गोप्रदानेनस्वर्गमाप्नोति दशधेनु-
प्रदो गोलोकं शतप्रदश्च ब्रह्मलोकम् ॥

जावालः । होमार्थमग्निहोत्रस्य योगान्दद्यादयाचिताम् ।
त्रिवित्तपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥ ८ ॥

प्राणी एक गोदान से स्वर्ग और दस गउओं के दान से गो लोक जो कि स्वर्गादि लोकों से श्रेष्ठ और ऊर्द्ध है और सौ गउओं के दान से ब्रह्म लोक का निवासी होता है ।

बिन मांगी हुई गऊ को यज्ञके अर्थ अग्निहोत्री को देवे तौ मानो तीन वार द्रव्य परिपूर्ण पृथ्वी का दान किया अर्थात् इस महा दान के फलों को वह नर एक गोदान ही से पाता है ॥८॥

याज्ञवल्क्यः । यथाकथंचिद्दत्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा ।
आरोगामपरिक्लिष्टो दाता स्वर्गे महीयते ॥ ९ ॥

रोग क्लेश रहित एक ब्यान की अथवा अनेक ब्यान की गऊ के दान से दाता नर स्वर्ग में देवताओं से सत्कार पाता है॥९॥

अङ्गिराः । गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः ।
सा हि तारयते पूर्वान्सप्त सप्त च सप्त च ॥ १० ॥

वेदपाठी एक ही ब्राह्मण को चाहै गऊ दे वह गऊ उसके २१ पीढ़ी के पुरखों को नरक से स्वर्ग पहुँचाती है ॥ १० ॥

नन्दिपुराणे । विधिना च यदादत्ता पात्रे धेनुःसदक्षिणा ।
तदा तारयते जन्तून् कुलानामयुतैः शतैः ॥ ११ ॥

दक्षिणा के सहित गऊ योग्य को देना चाहिए वह उसके अनन्तानन्त श्रेणी के पूर्व पुरुषों को नरक से निकालती है ॥ ११ ॥

महाभारते । न वधार्थे प्रदातव्या न कीनाशेन नास्तिके ।
गोजीवेन च दातव्या तथा गौःपुरुषर्षभ ॥ १२ ॥

घातुकों के हाथ गऊ न बेचना चाहिए तथा गउओं से जो हल चलाते हैं और जो नास्तिक अर्थात् गोमाहात्म्य नहीं मानने वाले जैसे कि म्लेच्छ यवनादि ऐसों को भी गऊ न देना चाहिए और जो गऊ से लादी आदि व्यापार करते हैं उनको भी गऊ न देना चाहिए ॥ १२ ॥

गोमत्यां यमः । गावःसुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः ।
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावःस्वस्त्ययनं महत् ॥ १३ ॥

साधारण भी गऊ को कामधेनु समझे गऊ सेवा शरीर की दुर्वासना छुड़ाती है गऊ संसार की अधार हैं और गउएं परम मङ्गल स्वरूप होती हैं ॥ १३ ॥

अन्नमेवपरंगावो देवानांहविरुत्तमम् ।
पावनंसर्वभूतानां रक्षन्तिचवहन्तिच ॥ १४ ॥

गऊ से अन्न अर्थात् गव्य से यज्ञ उससे वृष्टि उस्से अन्न होता है और देवताओं को हवि से संतुष्ट करती है और कैसा भी हो उस्को भी दर्शनादि से पवित्र करती है इससे इस लोक परलोक दोनों में सहाय होती है ॥१४॥

हविषामन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ।
ऋषीणामग्निहोत्रीणां गावोहोमप्रतिष्ठिकाः ॥ १५ ॥

मन्त्र से गव्य को पाय देवता सन्तुष्ट होते हैं और किसी भी अन्य पशु के दधि दुग्ध घृतादि से यज्ञ नहीं सिद्ध होते किन्तु केवल गऊ ही के ॥ १५ ॥

सर्वेषामेवभूतानां गावःशरणमुत्तमम् ।
गावःपवित्रं परमं गावोमङ्गलमुत्तमम् ॥ १६ ॥

गउएं सेवा से वैतरणी आदि महा क्लेशों से सब प्राणियों की रक्षा करती हैं और अत्यन्त पवित्र होती हैं अर्थात् तीर्थादिवत्, और उत्तम मङ्गल ईश्वर दर्शनादिवत् ॥ १६ ॥

गावःसर्वस्यलोकस्य गावोधन्याःसवाहनाः ।
नमोगोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्यएवच ॥ १७ ॥

वाहन (वहन करने वाले) अर्थात् वृषभों के सहित गउएं धन्यवाद के योग्य होती हैं नमः से नमः तक गो नमस्कार मन्त्र है इसका अर्थ यह है कि लक्ष्मी की निवास स्वरूप कामधेनु की सन्तति ॥ १७ ॥

नमोब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्योनमोनमः ।
ब्राह्मणाश्चैवगावश्च कुलमेकंद्विधाकृतम् ॥ १८ ॥

तथा ब्रह्मदेव की कन्या का रूप अथवा वेदों में प्रसिद्ध पवित्र ऐसी गउओं को नमस्कार है ॥ १८ ॥

एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।
वसिष्ठः । गावो ममाऽग्रतोनित्यं गावःपृष्ठत एव च ।
गावो मे सर्वतश्चैव गवांमध्ये वसाम्यहम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मण और गउएं एकही पदार्थ दो रूप से हैं । १ में अर्थात् ब्राह्मण रूप विभाग में मन्त्र अर्थात् वेद और दूसरे गोरूप में हवि घृत दुग्धादि हवनीय द्रव्य हैं ॥ प्रार्थना और ध्यान मन्त्र गावः से अहम् तक ॥ गउएं मेरे आगे और गउएं हीं मेरे पीछे भी और गउएं मेरे चारो ओर मैं गउओं के मध्य में वास करूं अथवा करता हूँ ॥ १९ ॥

गोप्रदानंतारयतेसप्तपूर्वान्नरांस्तथा ।
कात्यायनः । शीलोपपन्नां सवनोत्तरीयां कांस्योपदोहां कनकान्तशृङ्गीम् । विप्रायदत्वा भगवत्प्रियाय सयाति-लोकानमृतान् सुपुण्यान् ॥ २० ॥

गोदान दाता और दाता के ७ पुरखों को स्वर्ग पहुँचाता है सीधे स्वभाव को अच्छी झूल सुवर्ण से मढ़े सींग और फूल को दोहनी वाली गऊ को वेदवेदाङ्ग पारग ब्राह्मणों को देने से अक्षय्य परम पुण्य लोकों में निवास दानकर्ता करता है ॥ २० ॥

संवर्त्तः । योददाति शफै रौप्यै र्हेमशृङ्गीमरोगिणीम् ।
सवत्सां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ २१ ॥

चांदी के खुर सुवर्ण के सींग वाली रोग रहित वत्स सहित

अच्छे वस्त्र ओढ़ो हुई वत्स सरल स्वभाव वाली दुग्ध गऊ को जो दान करता है वह नर ॥ २१ ॥

यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्सायादिवङ्कतः ।
तावतो वत्सरानास्ते स नरो ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ २२ ॥

गऊ के रोम तुल्य वर्ष ब्रह्मलोक में वास कराता है ॥ २२ ॥

देवलः । विधिमभिधाय—दत्त्वैवं वित्तभोगाढ्योदिव्य-स्त्रीवृन्दसंयुतः । गोवत्सरोमतुल्यानि वर्षाणि दिवि मोदते ॥ २३ ॥

इस पूर्वोक्त विधि से गोदान करके गऊ और वत्स के रोम समान वर्ष स्वर्ग में अप्सराओं से सेवित नाना प्रकार के द्रव्य भोग युक्त आनन्द करता है ॥ २३ ॥

नन्दिपुराणे। सदक्षिणां प्रदद्याङ्गांसोऽक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ।
गवि रोमाणि यावन्ति प्रसूतिकुलसंस्थितः ।
तावन्त्यब्दानि वसति स्वर्गेदाता न संशयः ॥ २४ ॥

दक्षिणा के सहित गऊ के दान से गऊ के रोम तुल्य वर्ष शरीर त्याग पीछे दाता स्वर्ग में वसता है यह निश्चित वार्ता है २४

आदित्यपुराणे। गां ददामीहमित्येव वाचापूयेतसर्वशः ।
मातृकं पैतृकं चैव यच्चान्यद्दुष्कृतं भवेत् ॥ २५ ॥

गोदान के पुण्य को कौन कह सकता है किन्तु मैं गोदान करूं ऐसी वाणीहो से मनुष्य पवित्र हो जाता है जो उसके माता पिता का कुल पाप और सम्बंधियों का जो पाप उसके पाप की तो बात हो इस सब पापों को ॥ २५ ॥

पापञ्च तस्य तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ।
वर्षकोटिसहस्रन्तु पुमान्स दिवि मोदते ॥ २६ ॥

'गांददानीह' यह वाक्य कैसे जलाता है जैसे कि लकड़ी आदि को अग्नि वह नर करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्दित होता है ॥ २६ ॥

दासोदासैरलङ्कारैः स्तूयते सर्वजन्तुभिः ।
अरोगश्चैव जायेत तेजस्वी च भवेन्नरः ॥ २७ ॥

नाना प्रकार के किङ्कर किङ्करी आभूषण वस्त्रादि संपूर्ण उत्तम वस्तु से युक्त और सर्व जन प्रशंसा पात्र तथा रोगादि संपूर्ण दोष रहित प्रकाशमान मूर्ति त्रिभुवन व्याप्त कीर्ति वह प्राणी इस लोक में जन्म पाय के होता है ॥ २७ ॥

तथा पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
नरकस्थाः स मुच्यन्ते नीलां गां ददते तु यः ॥ २८ ॥

और नील गऊ को जो दान कर्ता है उस्के पिता पितामह प्रपितामह ये नरक में जो पड़े होवैं तौ नील गोदान प्रभाव से निर्मुक्त हो जाते हैं ॥ २८ ॥

वर्षकोटिसहस्राणि लोके तिष्ठति वारुणे ॥ २९ ॥
इत्यादि महाभारते ।

और वह तो हजारों कोटि वर्ष वरुणदेव के लोक में टिकता है। इत्यादि अनन्तानन्त गोदान फल लिखा है ॥ २९ ॥

समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंपन्नां ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३० ॥

माता के वर्ण वाले वत्स से युक्त पहिले व्यान की बहुत दूध वाली दोहन आदि समयों में सीधी कपिला को वस्त्रादि सर्व भूषण भूषित करके जो दान कर्ता है वह ब्रह्मलोक में सत्कृत होता है ॥ ३० ॥

रोहिणीं तुल्यवत्साञ्च धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ॥ ३१ ॥

और सर्वथा पूर्ववत् लक्षण लक्षित लाल रङ्ग की गऊ दान से दाता इन्द्रलोक का निवासी होता है ॥ ३१ ॥

एवंतत्तद्वर्णगोप्रदानेन तत्तल्लोकावाप्तिर्निर्दिष्टा ——
कपिलां ये प्रयच्छन्ति वस्त्रच्छन्नां स्वलंकृताम् ॥ ३२ ॥
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालांगूलभूषिताम् ।
श्वेतवस्त्रपरिच्छिन्नां घण्टास्वनरवैर्युताम् ॥ ३३ ॥
सहस्रं यो गवां दत्वा कपिलां चापि सुव्रत ।
सममेव पुरा प्राह ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ॥ ३४ ॥

उस उस रङ्ग की गऊ के दान से उस उस लोक में वास विहित है । मैं सविस्तर भय से नहीं लिखता हूँ ॥

अच्छा झूल ओढ़े उत्तम आभूषण भूषित सुवर्ण से मढ़े सीं जिसके चांदी के खुर बनवाए जिस्के मोतियों के गुच्छ पुच्छ लगे और घण्टी घण्टों के शब्द के कोलाहल से शोभित औ श्वेत वस्त्र की चांदनी आदि की छाया में खड़ी ऐसी एक कपिला का दान पूर्वोक्त सहस्र गोदान के समान होता है ऐस वेदार्थ ज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मदेव ने कहा ॥ ३२।३३।३४ ॥

यावन्ति रोमकूपानि कपिलाङ्गे भवन्ति हि ।
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ३५ ॥

कपिला के शरीर में जितने बाल उतने कोटि वर्ष तक उसक दाता स्वर्ग का वासी होता है ॥ ३५ ॥

याज्ञवल्क्यः । हेमशृङ्गी रौप्यखुरा सुशीला वस्त्रसंयुता ।
सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥ ३६ ॥

पूर्ववत् हेमशृङ्गी रौप्यखुरा वस्त्रयुता कांस्यपात्र युक्त सुशील विशेष दूध देने वाली गौ दक्षिणा सहित पात्र को देना चाहिये ॥ ३६ ॥

दाताऽस्याःस्वर्गमाप्नोति वत्सरान् रोमसम्मितान् ।
कपिलाचेत्तारयति भूयस्त्वासप्तमं कुलम् ॥ ३७ ॥

रोम तुल्य वर्ष दाता स्वर्गवासी होता है यदि कपिला हो तो सप्त पूर्व पुरुषों को स्वर्ग पहुँचाती है ॥ ३७ ॥

व्यासः । रुक्मशृङ्गी रौप्यखुरां वस्त्रकांस्योपदोहनाम् ।
सवत्सां कपिलां दत्वा वंशान् सप्त समुद्धरेत् ॥ ३८ ॥

व्यास जी भी इस बात को कहते हैं ॥ ३८ ॥

यावन्ति तस्यारोमाणि सवत्साया भवन्ति हि ।
सुरभीलोकमासाद्य रमते तावतीःसमाः ॥ ३९ ॥

वत्ससहित दत्त गऊ के शरीर में जितने रोम हैं उतने वर्ष सुरभी लोक " कामधेनु लोक " में विहार करता है ॥ ३९ ॥

कूर्मपुराणे । कपिलां विप्रवर्य्याय दत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।
द्विगुणोपस्करोपेता महती कपिला स्मृता ॥ ४० ॥

वेदविहित विधि से उत्तम ब्राह्मण को कपिला के दान से दाता को मोक्ष अर्थात् दुःख निर्मुक्ति होती है जो पूर्व दान विधि में उपस्कार अर्थात् सामग्री लिखी है उसके दूने उपस्कार से महा कपिला होती है ॥ ४० ॥

दत्ता सा विप्रमुख्याय स्वर्गमोक्षफलप्रदा ।
सप्तजन्मकृतात्पापान् मुच्यते दशसंयुतात् ॥ ४१ ॥

उसको जो ब्राह्मण श्रेष्ठ को दान करै तौ वह स्वर्ग मोक्ष

फलप्रदः अर्थात् स्वर्ग करती है और इस लोकमें दारिद्र्यादि दुःख से छोड़ाती है वह दाता मनुष्य १७ जन्म के पापों से निर्मुक्त होता है ॥ ४१ ॥

यानन्यान् प्रार्थते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति मानवः ।
अन्ते स्वर्गापवर्गौ च फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४२ ॥

और जो मनोरथ उसके हैं सो सब सफल होते हैं । अन्त में 'शरीरान्त में' स्वर्ग और अनेक जन्मान्त में उत्तरोत्तर पुण्योंन्नति से मोक्ष सम्भावना भी होती है ॥ ४२ ॥

लिङ्गपुराणे। देवदक्षिणदिग्भागे धेनुः कार्या उदङ्मुखी।
प्राङ्मुखं वत्सकं कृत्वा ब्राह्मणं च उदङ्मुखम् ॥ ४३ ॥

शिव के दक्षिण ओर उत्तर मुख गऊ खड़ी करै और पूर्व मुख वत्स और ब्राह्मण भी उत्तर मुख ॥ ४३ ॥

प्राङ्मुखो यजमानस्तु पूजयेद्ब्राह्मणं ततः ।
कोऽदादिति च मन्त्रेण गृह्णीयाद्ब्राह्मणः स्वयम् ॥४४॥
एवं विधानतो दत्त्वा याति दाता शिवालयम् ।
तत्र भुक्त्वाऽक्षयान् भोगानन्ते ब्राह्मोति शाश्वतम् ॥ ४५ ॥

दाता पूर्वमुख होके ब्राह्मण का पूजन करै अर्थात् पूजनादि करके ग्रहण कीजिये ऐसी प्रार्थना करे तब ब्राह्मण "कोऽदात्कामोऽदात्" एतदादि मन्त्र को स्वयं पढ़ के ग्रहण करै इस विधि से दान से दाता महादेव के लोक में बहुत प्रकार के उपभोगों को कर इसी के पुण्य प्रभाव से जन्मान्तर में मोक्षभागी होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

देवीपुराणे। द्विजाय शिवभक्ताय सवत्सां गां निवेदयेत् ।
सहेमवस्त्रकांस्यां च महापुण्यमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

यावत्तद्रोमसंख्यानं तावद्देव्याः पुरं वसेत् ।
इहैव गतपापोऽसौ जायते नृपसत्तम ॥ ४७ ॥

सर्व उपस्कार सहित गऊ को शिवभक्त पात्र को दान करने से उसके रोम तुल्य वर्ष देवो अर्थात् पार्वती के पुर कैलाशादिकों में बास पाता है और दूसरे जन्म में अथवा उसी में पाप से निर्मुक्त हो राजा होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

विष्णुधर्म्मे मान्धातोवाच। ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य वा। यानि दानानि देयानि तान्याचक्ष्व द्विजोत्तम ॥४८॥

विष्णुधर्म्म प्रकरण भारत में मान्धाता का प्रश्न । ब्राह्मण और नारायण और शिव की प्रसन्नता के अर्थ जो दान देने को योग्य हांय उनको हे ब्राह्मणदेव मेरे प्रति कहिये ॥ ४८ ॥

येन चैव विधानेन दानं पुंसः सुखावहम् ।
ऐहिकामुष्मिकार्थं च करोति न विहन्यते ॥ ४९ ॥

और जिस विधि से दान करने से नर सुखभागो होता है और इस लोक परलोक दोनों में शुभ गति मिलतो है और जिससे अक्षय पुण्य होवे ऐसा कहिये ॥ ४९ ॥

तथा वसिष्ठेन। गोदानमादौ वक्ष्यामि प्रत्यक्षक्रमयोगतः।
इत्यादिना गोदानं तादृशमुक्तम् ॥
(वह्निपुराणे) विधिमभिधाय—
अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ॥ ५० ॥
सर्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ।
सप्तावरान् सप्तपरानात्मानं चैव मानवः ॥ ५१ ॥
सप्तजन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनीपते ।
पदेपदेऽश्वमेधस्य गोसवस्य च मानवः ॥ ५२ ॥

फलमाप्नोति राजेन्द्र दक्षायैवं जगौ हरिः ।
सर्वकामदुघासम्यक् सर्वलोकेषु पार्थिव ॥ ५३ ॥
भवत्यथो पापहरा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
सर्वेषामेव पापानां कृतानामविजानता ॥ ५४ ॥
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापोपबृंहितम् ।
सर्वेषामेव देवानामेकजन्मकृतं फलम् ॥ ५५ ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तथाशूद्रैश्च मानवैः ।
लोकाः कामदुघाः प्राप्ताः दत्वैतद्विधिना नृप ॥ ५६ ॥

तब वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया कि गोदान को मैं पहले कहता हूँ जिससे इसका प्रत्यक्ष पुण्य प्रभाव है (इत्यादि से गोदान वैसा प्रथम कहा है)

इस विधि से जो गोदाता वह सर्व मनोरथ पाय के वैष्णव लोक अर्थात् वैकुण्ठ जाता है और ७ पूर्व पुरुष तथा ७ पिछले और अपने को सप्त जन्म के पाप से छोड़ाता है औ ८ पैर चलना कहा है उसके पैर पैर में अश्वमेध गोसव के फल पाता है यह नारायण ने दक्ष को कहा । ऐसे दान से गौ सब लोक देती है सर्व पाप हरती है १४ इन्द्र भोगने तक भूल से हो गए सब पापों का यह प्रायश्चित्त पश्चात्ताप के साथ होता है, सब देवों की जन्ममात्र सेवा का फल देती है इस्से चारों वर्ण ने मनमाने लोक पाये हैं गोदान से अधिक इस संसार में कोई दान पवित्र नहीं ऐसा शास्त्रीय जन कहते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

गोभ्योऽधिकं जगति नापरमस्ति किञ्चिद्दानं पवित्रमिति
शास्त्रविदो वदन्ति । ताः सम्पदैः सुखप्रदैश्च समीहमानैर्देयाः
सदैव विधिनाद्धिजपुङ्गवेभ्यः ॥ ५७ ॥

इस से उत्तम दाताओं को उत्तम२ लोक की इच्छा से ब्राह्मण श्रेष्ठों को दान करना चाहियें ॥ ५७ ॥

स्कन्दपुराणे । शिवाय विष्णवे चापि यस्तु दद्यात्पयस्विनीम्।
धेनुं स्नानोपहारार्थं स परं ब्रह्म गच्छति ॥ ५८ ॥

वहुत दूध देने वाली धेनु को शिव अथवा नारायण के स्नानादि पूजा कार्य्यों के अर्थ जो देता है वह ब्रह्मलोक को जाता है ॥ ५८ ॥

भविष्यपुराणे। सौरीं सूर्याय यो दद्यात्तरुणीं च पयस्विनीम् । तेन दत्तं भवेत्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ५९ ॥

और जो ऐसी ही गऊ को सूर्य्य के अर्थ देता है उसको सर्व संसार दान का पुण्य होता है ॥ ५९ ॥

स्नानाग्निकार्यमुद्दिश्य सुरूपां सुपयस्वनीम् ।
कुलीनां कपिलां दत्वा दत्तं भवति गोशतम् ॥ ६० ॥

कोई भी गऊ को देवतादिकों के पञ्चामृतादि स्नान को वा यज्ञ के अर्थ देता है वह भी संपूर्ण संसार दान का पुण्य पाता है और जो अच्छी पाश्चात्यादि कपिला गऊ देवे तो साधारण १०० गऊ मानो दी ॥ ६० ॥

य एवं गामलंकृत्य दद्यात् सूर्य्याय मानवः ।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥ ६१ ॥
यो दद्यादुभयमुखीं सौरभेयीं दिवाकरे ।
सप्तद्वीपां महीं दत्वा यत् फलं तदवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

जो पूर्वोक्त विधि से गऊ को भूषित कर सूर्य्य अर्थ देता है वह अश्वमेध से अष्टगुण फल पाता है जो उभयमुखी अर्थात् प्रसव करती गऊ को सूर्य्य के लिये देता है वह पृथ्वी दान का पुण्यभागी होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

शिवधर्मात् । दशगावः सवृषभा वृषभैकादशी स्मृता ।
शिवाय विनिवेद्यैवं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ ६३ ॥
रुद्रैकादशतुल्यात्मा बलभोगादिभिर्गुणैः ।
शिवादिसर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते वशी ॥ ६४ ॥

१० गउएं १ वृष 'वृषभैकादशी' कहाती है इस पूर्वोक्त विधि से शिव के अर्थ इसको देके शुद्धचित्त दाता ११ रुद्र के तुल्य बल ऐश्वर्य्य युक्त शिवादिकों के लोक में वह सब को वश करता हुआ आनन्दवान् होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

भविष्यपुराणे । दशगावः सवृषभा वृषभैकादश स्मृतः ।
सूर्याय विनिवेद्येह यत् फलं लभते शृणु ॥ ६५ ॥
द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिगुणैर्युतः ।
सौरादिसर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते दिवि ॥ ६६ ॥

और जो सूर्य्य के अर्थ वृषभैकादशी देता है वह सूर्य्यआदिकों के लोक में वास पाता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

महाभारते । त्रिरात्रगोदानविधिविषये ।
प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ॥ ६७ ॥
गौर्मे माता वृषभश्च पिता मे दिवं शर्ममेप्रतिष्ठाप्रपद्ये ।
प्रपद्यैकाशर्वरीमुष्य गोषुमुनिर्वाणीमुत्सृजे गोप्रदाने ॥६८॥

त्रिरात्र गोदान विधि में गउओं के मध्य में खड़ा होके इन श्रुतियों को पाठ करै (श्रुतियों का अर्थ संक्षेप से) गउएं मेरी

को माता सी पूज्य हैं और वृष पिता सा और स्वर्ग मुझको उत्तम स्थान है मैं उस को तैयार हूँ। १ रात गउओं के बीच म मौनव्रत करके इस गो प्रदान समय में अर्थात् गोदान के अर्थ मन्त्रादि पाठ मैं बोलता हूँ॥ ६७॥ ६८॥ इस श्रुति से ध्यानानुष्ठान विधि भी सिद्ध हुआ॥

ऊर्जस्विन्य ऊर्जमेधाश्च यज्ञो गर्भोऽमृतस्य प्रतिष्ठा क्षितौ। प्रभावाः पुण्यभावाः प्राजापत्याः सर्वमित्यर्थवादः श्रुतौ हि सः॥ ६९॥

बलवती सब अनिष्टों से बचाने वाली, उदार स्वभाव, दया क्षमादि की स्थान, गउएं यज्ञ हैं अर्थात् यज्ञसाधन होने से यज्ञ सरूपही हैं, यज्ञ हैं इस्से पृथ्वी ही में अमृत स्थान, नाम स्वर्ग हुईं, इष्टानिष्ट करने को समर्थ भी केवल लोगों का इष्ट करती हैं, साक्षाद्ब्रह्मदेव की कन्या स्वरूप हैं, और२ श्रुतियों में अर्थवाद से बड़ाई होती है सो नहीं यह तथ्यवाद है॥६९॥

गावो ममैनः प्रमुदन्तु सौर्यास्तथासौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु। आहूता मे ददतश्चाश्रयन्तु तथा मुक्ताः सन्तु सर्वाशिषो मे॥७०॥

सूर्य्य देवता की गउएं मेरे पाप को नाशैं, चन्द्रदेवता की मेरे को स्वर्ग ले चलैं, बोलने से मुझ को आश्रय देवैं, और तथा संपूर्ण मेरी आशा प्रतिबन्ध रहित होवैं॥ ७०॥

शेषोत्सर्गेकर्मभिर्देहमोक्षे सरस्वत्यःश्रेयसि संप्रवृत्ताः। यूयं नित्यं पुण्यकर्म्मोपवत्योदिशस्त्वम्मे गतिमिष्टां प्रपन्नाः॥७१॥

और कर्त्तव्य कार्य्यों की असमाप्ति में जो मेरा शरीर त्याग होवै, सद्गतिमती मेरे कल्याण को कीजिये; आप पुण्य कर्मवती कृपा क्षमादि गुण युक्त हैं इस से मैं आप के शरण में हूँ मुझे सद्गति स्वर्गादि रूप दीजिये॥ ७१॥

या वै यूयं सोऽहमाद्यैकभावो युष्मान्दत्त्वा चाहमात्मा प्रदाता।
नमस्कृता मन एवोपपन्नाः संरक्षध्वं सौम्यरूपोऽग्ररूपाः ॥७२॥

जो आप सो मैं अर्थात् मैं आप के शरण में हूँ इसी से आप के साथ मैं एक हुआ सो मैं आप को देके मानो आत्मदान किया इससे नमस्कृत मेरे चित्त में सदा बास कीजिये, वत्सल और उग्र रूप से मेरी रक्षा कीजिये अर्थात् शत्रुओं को उग्र रूप से घबड़ाइये और सौम्य से मेरा आश्वासन कीजिये ॥७२॥

व्यासः। आसन्नमृत्युना देया गौ सवत्सा तु पूर्ववत्।
तदभावे तु गौरेव नरकोद्धरणाय वै ॥ ७३ ॥

जिसका मृत्यु आय पहुंचा हो, उसको वत्स सहित गऊ देना चाहिये पूर्वोक्त विधि से सवत्सा न मिलै तो साधारण ही नरक से निकलने के अर्थ ॥ ७३ ॥

मन्त्रः। यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी।
तां तर्त्तुं गां ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीमिति ॥ ७४ ॥

बड़े भयानक यमद्वार में तपती वैतरणी नाम नदी उसके पार जाने को हे विप्र तुमको नरक में डूबते को निश्चित तारने वाली वैतरणी नाम की गऊ देता हूँ ॥ ७४ ॥

तथान्योऽपि। यमद्वारे महाघोरे दृष्ट्वा वैतरणीं नदीम्।
तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं च गाम् ॥ ७५ ॥

(७५ का भी यही अर्थ)

ब्रह्मपुराणे। वन्दनीयाश्च पूज्याश्च गावः सेव्याश्च नित्यशः
तथा–गवां गोष्ठे स्थितानां तु यः करोति प्रदक्षिणम्॥७६॥

प्रदक्षिणीकृतं तेन जगत्सदसदात्मकम् ।

विष्णुः । गावःपवित्रमाङ्गल्या गवि लोकाःप्रतिष्ठिताः ॥७७॥

गउएं नित्य स्तुति, पूजा, सेवा प्रश्न के योग्य होती हैं जो अपने स्थान में बँधी हुई गउओं की प्रदक्षिणा करता है वह संपूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा का पुण्य पाता है। गउएं पवित्र मंगल करने वाली होती हैं गउओं की कृपाही से सब लोक है ॥७६॥ ७७ ॥

गावो वितन्वते यज्ञङ्गावः सर्वाघसूदनाः ।
गवां कण्डूयनं चैव सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ७८ ॥
गवां ग्रासप्रदानेन स्वर्गलोके महीयते ।
पद्मपुराणे। सदा गावः प्रणम्यास्तु मन्त्रेणानेन पार्थिव ॥७९॥
नमो गोभ्य इत्यादि पूर्ववत् ।
आदित्यपुराणे। लवणन्तु यथाशक्त्या गवां यो वै ददाति च।
तेषां पुण्यकृतां लोका गवां लोकं व्रजन्ति ते ॥ ८० ॥
योऽग्रं भक्त्या किञ्चिदप्राश्य दद्याद्-
गोभ्यो नित्यं गोव्रती सत्यवादी ।
शान्तो वृद्धो गोसहस्रस्य पुण्यं
संवत्सरेणाप्नुयाद्धर्मशीलः ॥ ८१ ॥

गउओं से यज्ञ होते हैं और सम्पूर्ण पापों को नष्ट करती हैं, गउओं का शरीर खुजलाना सर्व पाप नाशता है। गउओं को सदा ग्रासमात्र भी अन्न देने से दाता स्वर्ग वासी होता है । नमो गोभ्य इस पूर्वोक्त मंत्र से गउओं को सदा प्रणाम करना चाहिये । अपने शक्त्यनुसार गौओं को जो लवण चटाते हैं वे पुण्यात्माओं के लोक में और गो लोक में वास करते हैं । जो सत्यवादी गो सेवी शम दम युक्त वेद शास्त्र के वेत्ता भोजन से पूर्व अग्राशन

गऊ को देते हैं वे एक वर्ष में १००० गोदान का पुण्य पाते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

महाभारते । कृत्वा गवार्थे शरणं शीतवातक्षमं महत् ।
आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ॥ ८२ ॥

शीत, उष्ण, वायु बचने योग्य फैला घर जो बनाता है वह अपने ७ पुरुषों को सद्गति पहुँचाता है ॥ ८२ ॥

ब्रह्मपुराणे। सदोषा गौर्गृहे जाता परिपाल्या सदा स्वयम्।
दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रः सुसंयतः ॥ ८३ ॥
अनाथानां गवां यत्नात्कार्यस्तु शिशिरे मठः ।
पुण्यार्थं यत्र दीयन्ते तृणतोयेन्धनानि च ॥ ८४ ॥
एवं कृते महीं पूर्णां रत्नैर्दत्त्वा फलं लभेत् ।
गोप्रदानेन यत्पुण्यं गवां संरक्षणाद्भवेत् ॥ ८५ ॥

सदोष भी गऊ अपने घर रख के पालन पोषण के योग्य है जैसे ब्राह्मण दुःस्वभाव का भी पूज्यही है और बड़ा ध्यानी भी शूद्र होय सेवा ही के काम का होता है। शीत ऋतु में गउओं को जो मन्दिर बनवा देते हैं जिसमें किङ्कर दाना चारा पानी देते हैं स्वामी की ओर से धूनी लगा लगा के गउओं को तपाता है (यह वस्त्र के अभाव में) ऐसा करने से रत्नों से पूर्ण संपूर्ण पृथ्वी दान पुण्य लब्ध होता है और गोप्रदान का पूण्य गऊ की सेवा से मिलता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

मनुष्यैस्तृणतोयाद्यैर्गावः पाल्या प्रयत्नतः ।
देवाः पूज्याश्च पोष्याश्च प्रतिपाल्याश्च सर्वदा ॥ ८६ ॥
गावः कृशातुराः पाल्याः श्रद्धया पितृमातृवत् ।
गिरिप्रपातसिंहर्क्षशीतातपभयातुराः ॥ ८७ ॥

महाकोलाहले घोरे दुर्दिने देशविप्लवे ।
गवां तृणानि देयानि शीतलं च तथा जलम् ॥ ८८ ॥

चारा पानी इत्यादि से गउओं की सदा बड़े यत्न से रक्षा करनी चाहिये और दान करना चाहिये पूजा करनी चाहिये पुष्ट करना चाहिये और रक्षण कराना चाहिये । गउएं दुर्बल भूखी प्यासी हों भक्ति से माता पिता सी रक्षण करना चाहिये पर्वत के खिसिलने से सिंह और रीछ से शीत उष्ण के भय से आतुर जो होवें उन को भी । कोई युद्धादि आ पड़ै बरसात में काल के दिन देश भगाई इत्यादि समय में गउओं को चारा ठण्ढा पानी देना चाहिये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

विष्णुधर्मोत्तरे । गावः पवित्रा माङ्गल्याः गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः । गावो वितन्वते यज्ञं गावो विश्वस्य मातरः ॥८९॥
यावतीः शक्नुयाद्गावः सुखं धारयितुं गृहे ।
धारयेत्तावतीर्नित्यं क्षुधितास्ता न धारयेत् ॥ ९० ॥
दुःखिता धेनवो यत्र वसन्ति द्विजमन्दिरे ।
नरकं समवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ९१ ॥
दत्वा परगवे ग्रासं पुण्यं स महदश्नुते ।
सिंहव्याघ्रभयत्रस्तां पङ्कलग्नां जले गताम् ॥ ९२ ॥
गामुद्धृत्य नरः स्वर्गे कल्पभोगानुपाश्नुते ।
गोवधेन नरो याति नरकानेकविंशतिम् ॥ ९३ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं तासां तु पालनम् ।
विक्रयाच्च गवां राम नरकं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥
तासां तु कीर्तनादेव नरः पापात्प्रमुच्यते ।
दानेन तु यथा तासां कुलान्यपि समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥

त्राणं चैवात्मनः कार्यं भयार्त्तास्ताः समुद्धरेत् ।
आत्मानमपि संत्यज्य गोव्रतं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ९६ ॥
गोमातृभ्यो नमस्कृत्य कुर्याद्यस्तु प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ९७ ॥
कुतस्तस्य भवेत्पापं गृहं यस्य विभूषितम् ।
सततं वालवृद्धाभिरर्जुनीभिरलंकृतम् ॥ ९८ ॥

(८१ इसका अर्थ हो चुका है)

जितनी गऊ घर में रख सकै उतनी की रक्षा करै भूखी एक भी न रक्खै । जिसके यहां दुखित गउएं रहती हैं वह नरक भागी होता है यह तथ्यवाद है । दूसरे के गऊ को अन्नाशनादि थोड़ा सा भी देने से बड़ा पुण्य होता है । सिंह व्याघ्र के भय से घवड़ानी कोंचड़ में फँसी जल में डूबती गऊ के रक्षण से अनन्त कल्प स्वर्ग होता है । गो वध से २१ नरक भोगना पड़ता है । इस्से जैसे बनै तैसे गो रक्षण करना ॥ हे राम ! गऊ के रोष से नर नरक में पड़ता है । और उनकी स्तुति मात्र से भी पाप नष्ट होते हैं । उनके दान से तो पुरुषों को भी नर तार सकता है । अपने शरीर का रक्षण धर्मशास्त्र विहित है, परन्तु गऊ के अर्थ प्राण भी छोड़ देना चाहिये यही सच्ची गोभक्ति है जसी महाराज दिलीप ने की । हाथ फेर के जो गऊ की प्रदक्षिणा करता है सब पृथ्वी प्रदक्षिणं का पुण्य पाता है । छोटी बड़ी गउओं से जिस का घर संपत्ति से पूर्ण भूषित है उसके पाप के लेश की सम्भावना भी नहीं हो सकती ॥९०॥९१॥९२॥९३॥९४॥९५॥९६॥९७॥९८॥

गवि तीर्थानि मेदिन्यामासमुद्रसरांसि च ।
गवां शृङ्गोदकस्नानं कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ ९९ ॥

गावो ये ताडयन्तीह सर्वलोकस्य मातरः ।
ते यान्ति रौरवंनाम नरकं नात्र संशयः ॥ १०० ॥
ताडयेद्यस्तु वै मोहाद्गास्तु कश्चिन्नराधमः ।
स गच्छेन्नरकं घोरं संपोडकमिति श्रुतिः ॥ १ ॥
यस्ताः शुश्रूषते भक्त्या स पापेभ्यः प्रमुच्यते ।
यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २ ॥
बहुना च किमुक्तेन गावः पाल्याः प्रयत्नतः ।
गावो देयास्तथा रक्ष्याः पूज्या ग्राह्याश्च सर्वशः॥३॥इति शङ्ख।

पृथिवी में समुद्र से तालाव तक छोटे बड़े तीर्थ वे सब गऊ के शृङ्गोदक के सोरहवें अंश को भी नहीं पाते हैं उतना भी पुण्य नहीं कर सकते हैं ॥ ९९ ॥

सर्व लोक की माता तादृश पूज्य गउओं को जो ताड़न करते हैं वे निश्चय रौरव नामक नरक में पड़ते हैं ॥ १०० ॥

और जो दुष्ट मोहादि से गऊ का वध करता है वह चाण्डाल घोर नरक में पड़ता है जिसका नाम संपीड़क ऐसा श्रुति कहती है ॥ १ ॥

जो गउओं को भक्ति से सेवता है वह जन्म भर के पाप से अल्प समय में छूट जाता है ॥ २ ॥

बहुत वारम्बार कहने से क्या है सर्वथा सर्वदा सब को बड़े से बड़े प्रयत्न से गौओं का प्रदान, पात्र में रक्षा, पूजा ग्रहण अर्थात् आश्रय दान करना चाहिये ॥ ३ ॥

इति ॥



श्रीगणेशाय नमः

अथ गङ्गाष्टकप्रारम्भः ।

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये ।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बुपिबतस्त्वद्वीचिमुत्प्रेङ्खत-
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥ १ ॥

हे माता भागीरथी तुम पार्वती की सपत्नी पृथिवी के शृङ्गार के लिये मालाओं की पङ्क्ति और स्वर्ग में जाने के लिये सीढ़ी हो इस से मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे तीर पर वास कर तुम्हारा जल पीकर तुम्हारे लहरों को देखते तुम्हारे नाम का स्मरण करते और तुम में दृष्टि लगाये मेरे शरीर का नाश हो ॥१॥

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरम्
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः ।
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥

हे नरक से रक्षा करने वाली गङ्गे तुम्हारे तीर पर लगे हुए वृक्ष के कोटर में रहने वाला पक्षी और जल में बसनेवाली मछली और कछुआ भला परन्तु वह राजा भला नहीं जिसकी मदान्ध हाथियों के समूह के संघर्षण से बजे हुए घंटों के झणत्कार शब्द से डरी हुई शत्रुओं की समस्त स्त्रियां स्तुति करती हैं॥ २ ॥

उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वाराणस्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः ।

न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्काणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुतावीजितो भूमिपालः ॥ ३ ॥

बैल पक्षी घोड़ा सांप हाथी अथवा कोई जन्तु काशी में जनन और मरण का क्लेश नहीं सहता परन्तु दूसरे स्थान पर यह बात नहीं चाहे निरन्तर बजते हुए कङ्कण के शब्द संयुक्त सुन्दर स्त्रियों के चंवर की वायु से सेवित राजा भी हो ॥ ३ ॥

काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितम्
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुललितं वीचिभिरान्दोलितम् ।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥ ४ ॥

हे स्वर्ग मृत्यु पाताल गामिनी परमेश्वरी गङ्गे मैं अपने शरीर को ऐसा कब देखूँगा जिस को कौए नोच रहे हैं कुत्ते काट रहे हैं और सियार घसीट रहे हैं जो जल प्रवाह में हलोरा खा रहा है और तट पर लग जाने से जल में सुन्दर देख पड़ रहा है जिस को लहरें इधर उधर फेंक रही हैं और जिस पर देवाङ्गना अपने हस्तगत सुन्दर चमर से वायु कर रही हैं ॥ ४ ॥

अभिनवबिसवल्लीपादपद्मस्य विष्णो-
र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला ।
जयति जयपताका क्वाप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥

हे जाह्नवी हम लोगों को पवित्र करो क्योंकि तुम विष्णु के चरण कमल में नवीन नालदण्ड और शिव की जटा में मालती के फूल की माला के सदृश देख पड़ती हो मोक्ष रूपी लक्ष्मी की कोई एक जय पताका और कलि के कलङ्क को नाश करनेवाली हो ॥५॥

एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम् ।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूबर्गस्तनाफ़ालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥ ६ ॥

प्रति दिन मैं ऐसे निर्मल जल में स्नान करूं जिस पर ताड़ तमाल सखुआ और सरल वृक्षों की हिलती हुई लताओं की छाया हो जिस पर सूर्य की तीव्र किरण न पड़ती हो जो सङ्ख चन्द्रमा और कुन्द के फूल के सदृश उज्ज्वल हो और गन्धर्व देवता सिद्ध किन्नरों की स्त्रियों से अवगहित हो ॥ ६ ॥

गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणाच्च्युतम् ।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥ ७ ॥

हे गङ्गे तुम्हारा जल मनोहर है तुम विष्णु के चरण से निकली हो और शिव जी के मस्तक पर रहने वाली और पापनाशिनी हो मुझ को पवित्र करो ॥ ७ ॥

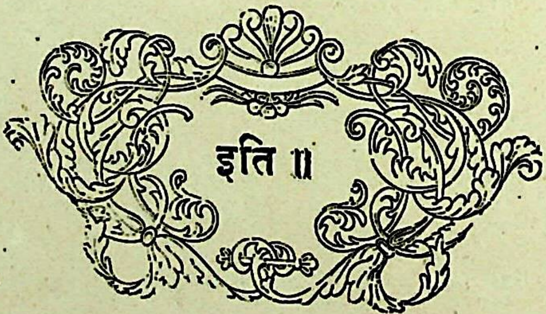
पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि ।
झङ्कारकारि हरिपादरजोपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥ ८ ॥

गङ्गा का शुभकारी जल मुझ को सदा पवित्र करे क्योंकि वह पाप को हरता है और पाप के शत्रु रूपी तरङ्ग को धारण करता है पर्वत पर बहता है और हिमालय की गुहा का विदारण करने वाला है झणत्कार शब्दकारी है और विष्णु के पदरज का धोने वाला है ॥ ८ ॥

गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः ।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु
मोक्षं लभेत् पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥ ९ ॥

इति गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

जो मनुष्य वाल्मीकि कविकृत शुभदायक गङ्गाष्टक को प्रतिदिन प्रातःकाल पढ़ता है वह शरीर के कलि सम्बन्धी पापरूपी पङ्क को शीघ्र धोकर मोक्ष पाता है और भवसागर में कभी नहीं पड़ता ॥ ९ ॥



Benares:
JAGGESHAR PRESS.